मोहन राकेश के नाटकों में वस्तुगत प्रयोग

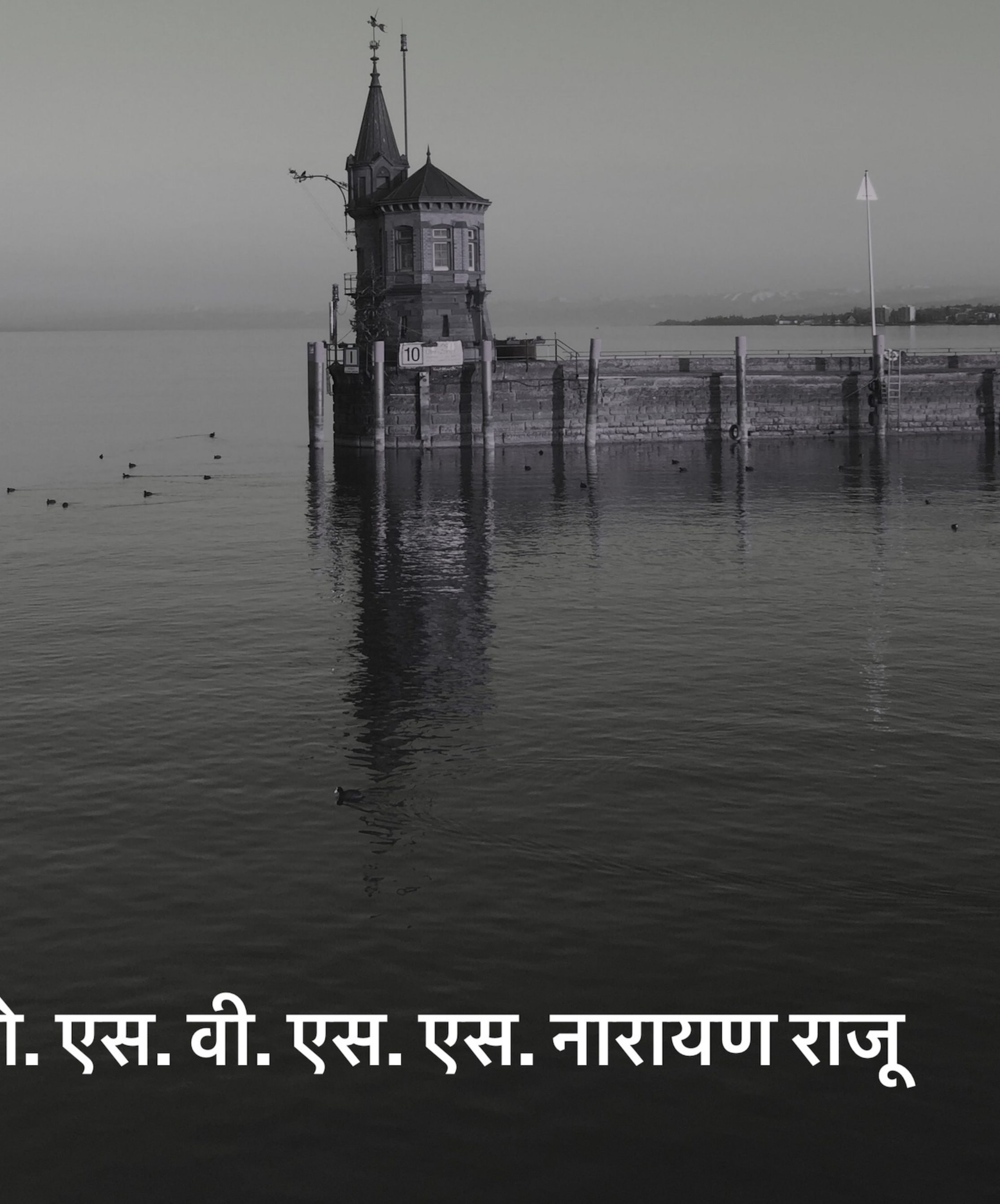

प्रो. एस. वी. एस. एस. नारायण राजू

मोहन राकेश के नाटकों में वस्तुगत प्रयोग

प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू

प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू

जन्म : 01.07.1968, विजयनगरम, आंध्र प्रदेश।

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी. (हिन्दी)।

अनुभव : 21 वर्ष का अध्यापन अनुभव (स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर)।

विदेश में अध्यापन का अनुभव : दो साल (2010-2012) सोफिया विश्वविद्यालय, सोफिया, बुलगारिया।

शोध निर्देशन : 16 वर्ष (एम. फिल्. और पी-एच.डी. के 77 शोधार्थियों का सफलतापूर्वक शोध निर्देशन)

प्रकाशन : देश और विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में 170 आलेखों और शोध-पत्रों के अलावा 24 मौलिक तथा अनूदित कविताएँ प्रकाशित।

संपादन : दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की मासिक हिन्दी पत्रिका **'पूर्णकुंभ'** - सहायक संपादक 2001-2002

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की द्विभाषा मासिक पत्रिका **'स्रवंति'** - सहायक संपादक 2002-2006

पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण विशेषांक (स्रवंति) का संपादन।

''हिन्दी कृषक'' ग्रंथ का संपादन।

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका **'बहुव्रीहि'** - संपादक (2013 जुलाई से)

संप्रति : अतिरिक्त कुलसचिव उच्च शिक्षा और शोध संस्थान द.भा. हिंदी प्रचार सभा।

डॉ. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू ने प्रस्तुत गवेषणापूर्ण समीक्षा ग्रंथ "मोहन राकेश के नाटकों में वस्तुगत प्रयोग" में सर्वथा नवीन और मौलिक दृष्टि से विवेच्य विषय का प्रतिपादन किया है। भारतेंदु हरिशचंद्र जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश हिंदी नाटकों को अपने अपने ढंग से नई दिशा प्रदान करने वाले प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। भारतेंदु ने विषय, शिल्प और रंगमंच की दृष्टि से हिंदी नाटक को आधुनिक काल के आरंभिक दिनों में क्रांतिकारी मोड़ देने का साहस किया जबकि प्रसाद ने अनभिनेय और पाठ्य कहे जाने का खतरा उठाते हुए हिंदी नाटक को सांस्कृतिक सघनता प्रदान की। मोहन राकेश ने इन दोनों से आगे बढ़कर नई जमीन तोड़ी। उनके नाटकों में बोध के स्तर पर तो नयापन है ही; पात्र परिकल्पना और चरित्र चित्रण तक में टटकापन दर्शन को सहज ही बाँधने में सक्षम है। आधुनिक जीवन की मानसिक सामाजिक और अस्तित्वगत विसंगतियाँ अपनी पूरी द्वंद्वात्मकता के साथ उनके नाटकों में अनुस्यूत हैं। नाट्यशिल्प के स्तर पर प्रतीकात्मकता और बिंब योजना के साथ-साथ मोहन राकेश की एक बड़ी विशेषता शब्दातीत अर्थ को व्यंजित करने की उनकी अपूर्व क्षमता के रूप में सामने आती है। इस ग्रंथ में मोहन राकेश के नाट्य साहित्य की इस तमाम मौलिकता को प्रयोगधर्मिता के विविध आयामों के रूप में उद्घाटित किया गया है।

-ऋषभदेव शर्मा

प्रस्तावना

साहित्य की प्रत्येक विधा को युगानुकूल संप्रेष्य की अभिव्यक्ति करने के लिए प्रत्येक युग में नया रूप धारण करना ही पड़ता है। परिवर्तित युगीन संदर्भ प्रत्येक साहित्यिक विधा के कथ्य और रूपबंध को नया रूप धारण करने के लिए बाध्य करते आये हैं। इस परिवर्तन के पीछे साहित्यकार की प्रयोगधर्मिता सक्रिय रहती है। जो साहित्य की जीवन्त बनाये रखने के लिए आवश्यक है। साहित्य में प्रयोग का महत्त्व निर्विवाद है। सार्थक प्रयोगों की अवधारणा जीवन्त साहित्य का अनिवार्य आयाम भी है। नाट्य दृश्य-काव्य है। इसलिए नाटक के क्षेत्र में तो प्रयोगधर्मिता और भी अधिक विचारणीय है। रंगमंच से नाटक की संलग्नता प्रयोग के लिए अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में उसे अधिक व्यापक क्षेत्र देती है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी साहित्य एक नया मोड़ का एक नई चेतना का और एक नए संदर्भ का साहित्य है। आजादी एक साथ कई चीजें लेकर आई नये मान-मूल्य नये तौर तरीके और नया इतिहास। स्वतंत्रता-प्राप्ति के अनंतर हिन्दी में रंगमंच को योजनाबद्ध ढंग से विकसित करने की शुरूआत हुई है। नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा की स्थापना प्रान्तों में राजकीय स्तर पर रंगादोलन को प्रोत्साहन तथा सांस्कृतिक आवश्यकता के रूप में शिष्ट समाज में रंगमंच के प्रति बढ़ती हुई अभिरुचि के सम्मिलित संघात से नाट्य-प्रयोगों का परस्पर प्रभावित करने वाला चल पड़ा है जिससे हिन्दी रंगमंच और नाट्य-लेखन दोनों ही गंभीर अर्थवान रूप ले सकता है। स्वातंत्र्योत्तर स्थितियों में हमारा जनमानस हमारा जीवन कहाँ से कहाँ आ गया है। इसका सही गवाह मोहन राकेश का साहित्य है। एक अर्थ में मोहन राकेश का साहित्य बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के जीवन और साहित्य का सच्चा और प्रामाणिक दस्तावेज है।

हिन्दी नाट्य-साहित्य में प्रयोगशीलता का वास्तविक उन्मेष स्वातंत्र्योत्तर पृष्ठ-भूमि पर दिखाई देता है। स्वाधीन भारतीय परिवेश ने नाटककार को नए कथ्य और नयी अभिव्यक्ति को आत्मसात करने के लिए विवश किया। इस अवधि के अन्य नाटककारों के समान मोहन राकेश ने भी वर्तमान जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और अनुभव को नाटक से जोड़ने परंपराओं के औचित्य पर प्रश्न चिह्न लगाने और आधुनिक व्यक्ति के विसंगत परिवेश को मुखरित करने के विविध प्रयोग किए हैं। मोहन राकेश ने हिन्दी नाटक को सही तरह से पहली बार रंगमंच अभिनेता

निर्देशक और प्रेक्षक से जोड़ने का नूतन प्रयास किया। मोहन राकेश हिन्दी के एक विशिष्ट नाटककार हैं। जिनके सभी नाटक विभिन्न नाट्य-संस्थाओं के द्वारा सफलता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। मोहन राकेश ने नाटक तथा रंगमंच को उनके यथार्थ परिप्रेक्ष्य में देखा है। उनकी धारणा है कि नाट्य रचना के सभी प्रयास तब तक प्रयोगात्मक तथा अपूर्ण रहते हैं जब तक उन्हें बार-बार रंग मंच पर प्रस्तुत न किया जाय। उन्होंने जीवंत रंगमंच को नाटकीय क्रिया-कलाप का आवश्यक अंग माना है। हिन्दी रंगमंच के स्वतंत्र विकास के लिए कतिपय सुझाव देते हुए मोहन राकेश ने लिखा है "हिन्दी रंगमंच को हिन्दी-भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा। रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा। हमारे दैनंदिन जीवन के राग-रंग को प्रस्तुत करने के लिए हमारे संवेदों और स्पन्दनों को अभिव्यक्त करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूपविधान नाटकीय प्रयोगों के अभ्यन्तर से जन्म और समर्थ अभिनेताओं तथा दिग्दर्शकों के हाथों उसका विकास होगा।" (मोहन राकेश: आषाढ़ का एक दिन: दो शब्द पृ.सं. 1)

सृजनात्मक स्तर पर परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करनेवाले हिन्दी नाटककारों में मोहन राकेश का नाम बहुचर्चित है। उन्होंने इस परिवर्तन को विस्तार से प्रस्तुत किया है। मोहन राकेश सांस्कृतिक दृष्टि-संपन्न नाटककार और कलाबोध युक्त रंग-निर्देशक थे। इन्होंने नाटक की सफलता और असफलता का आधार रंगमंच को माना। ऐतिहासिक नाटकों को रचनात्मक-स्तर पर महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए उनमें समसामयिक जीवन के बोध का संवेदन दिया गया है। यथार्थवादी नाट्य-परम्परा का अनुकरण करते हुए मोहन राकेश ने अपने नाटकों में काव्य-तत्त्व और साहित्यिक गुणों को प्रतिष्ठित किया। इनके नाटकों में प्रतीकात्मकता तथा कल्पनाशील सांकेतिकता के साथ-साथ संगीत आलोक आदि पार्श्व प्रभावों का कलात्मक संयोजन भी हुआ है। बौद्धिकता उहा पोह सपाटता और शुष्कता की अपेक्षा उनके नाटकों में कल्पना भाव प्रवणता यथार्थ कथात्मक सूत्रों के साथ सृजनात्मक भाषा का भी संयोजन हुआ है। उनके नाटकों में प्रयोगधर्मिता स्पष्टत: तीन आयामों में व्यक्त हुई है। इसका पहला आयाम वस्तु के स्तर पर व्यक्त हुआ है। दूसरा आयाम नाट्य-शिल्प की नवीनता से संबद्ध है। जिसमें कथ्य और रूपबंध दोनों में नवीनता लाने का प्रयत्न किया गया है। प्रयोगधर्मिता का तीसरा आयाम रंग-शिल्प से संबंधित है। मोहन

राकेश की प्राय: सभी नाट्य-रचनाएँ मंच के स्तर पर उनकी प्रयोगधर्मी रुचि के कारण ही विभिन्न प्रायोगिक रूप प्राप्त कर चुके हैं। ये नाटक विभिन्न मंचीय नाटक की निर्देशकीय प्रयोगधर्मिता के सशक्त प्रमाण हैं। मोहन राकेश के नाटकों की स्पृहणीय उपलब्धि यह है कि उन्होंने वर्षों से हिन्दी नाट्य-साहित्य में स्थापित नाटक के साहित्यिक और रंगमंचीय होने के कृत्रिम भेद को समाप्त कर दिया। उन्होंने हिन्दी नाटकों के विकास को रंगमंचीय गुणों तथा नाटकीय भाषा के प्रयोग से संपन्न बनाया। मोहन राकेश के प्रयोगधर्मी नाटकों में ऐतिहासिक तथा समकालीन जीवन्त संदर्भों में अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए संघर्षरत व्यक्ति की बेचैनी टूटते जीवन-मूल्यों और विघटित मानवीय संबंधों का सशक्त अंकन किया गया है।

"मोहन राकेश के नाटकों में वस्तुगत प्रयोग" वस्तु के स्तर पर मैंने प्रयोगधर्मिता का स्वरूप विवेचन प्रस्तुत करते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य चिन्तन की दृष्टि से प्रयोगधार्मिता की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। प्रयोगधर्मिता के विविध स्तरों पर आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। कथा-वस्तु पात्र-योजना चरित्रों की प्रतीकात्मकता एवं द्वन्द्वात्मकता और व्यक्तिवादी तथा अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन का प्रतिपादन आदि अलग-अलग अध्यायों के अंतर्गत वस्तुगत प्रयोगों के बारे में आलोच्य नाटकों में प्रयोगधर्मिता के विविध आयामों का व्यापक परिशीलन प्रस्तुत किया गया है।

प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू

दिनांक : 2013

अनुक्रम

प्रस्तावना 4

प्रथम अध्याय 11

प्रयोग और प्रयोगधर्मिता

1. भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यचिंतन : प्रयोगधर्मिता की अवधारणा

2. आधुनिक हिंदी नाटक : प्रयोगधर्मिता के विविध स्तर

द्वितीय अध्याय 19

मोहन राकेश के नाटकों में प्रयोगधर्मिता : वस्तुगत प्रयोग

1.कथा वस्तु के संदर्भ में नए प्रयोग आषाढ़ का एक दिन

(क) कथा-वस्तु की अछूती परिकल्पना

(ख) आधुनिकता बोध, अतिहास बोध और रोमानिया के मिश्रित संदर्भ

2. लहरों के राजहंस

(क) एतिहासिक बोध के धरातल पर आधुनिकता की खोज

(ख) विसंगतिपूर्ण परिवेश में मानव-नियति की अंतहीन तलाश

3. आधे-अधूरे

(क) अधूरे मनुष्य की काल्पनिक पूर्णता की खोज और भटकाव की अभिशप्त नियति

(ख) कथा हीनता में कथा की और असंबद्धता में संबद्धता की तलाश

4. अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक

(क) विघटित सामाजिक मूल्यों तथा संबंधों के प्रतीक

(ख) आदर्शवादी रूढ़ि मान्यताओं के खोखलेपन का उपहास (अण्डे के छिलके)

(ग) सामान्य जन छानेंवाले युद्ध के त्रासद प्रभाव का स्पष्टीकरण (सिपाही की माँ)

(घ) टूटते मानवीय संबंधों के सशक्त प्रतीक (प्यालियाँ टूटती है)

(च) मध्यवर्ग में क्रमश: समाती जा रही जड़ता पर तीखा व्यंग्य (बहुत बड़ा सवाल)

(छ) मोहन राकेश के नए नाट्य प्रयोग

(ज) दाम्पत्य जीवन पर छानेवाले मानसिक तनाव की शाब्दिक अभिव्यक्ति (शायद और हं:)

(झ) पार्श्व नाटक सामयिक युग की यांत्रिकता को साकार करने का प्रयत्न (छतरियाँ)

तृतीय अध्याय 65

मोहन राकेश की पात्र योजना

1. पात्रों में आधुनिक मानव का बिंब : हिंदी नाट्य परंपरा में अनूठा प्रयोग

2. प्रमुख पात्र : परिवेश और व्यक्ति का संघर्ष

2.1 पुरुष पात्र

(क) कालिदास (आषाढ़ का एक दिन)

(ख) नंद (लहरों के राजहंस)

(ग) महेंद्रनाथ (आधे-अधूरे)

2.2 गौण पात्र

(क) विलोम (आषाढ़ का एक दिन)

(ख) प्रियंगुमंजरी (आषाढ़ का एक दिन)

(ग) बिन्नी (आधे-अधूरे)

(घ) श्याम, बीन, राधा, गोपाल, जमुना, माधव (अण्डे के छिलके)

(च) बिशनी, मुन्नी, कुंती, दीनू, 1. लड़की 2. लड़की (सिपाही की माँ)

(छ) माधुरी, मीरा, पम्मी, दीवानचंद, भोलानाथ, महिपाल (प्यालियाँ टूटती हैं)

(ज) बारह पात्र (बहुत बड़ा सवाल)

(झ) पुरुष और स्त्री (शायद)

(ट) पपा और ममा (हं:)

चतुर्थ अध्याय 115

चरित्रों की प्रतीकात्मकता एवं द्वंद्वात्मकता

1. पात्रों की द्वंद्वात्मकता के सहारे व्यक्ति की सर्जनशीलता की खोज (कालिदास और विलोम)

2. भावनामयी और यथार्थवादी नारी के प्रतीक (मल्लिका और अंबिका)

3. प्रवत्तिमार्गी उच्चवर्गीय पारिवारिक सदस्यों के प्रतीक (नंद और सुंदरी)

4. अनिश्चति और घटनाहीन जिंदगी के प्रतीक (स्त्री और पुरुष)

पंचम अध्याय 147

व्यक्तिवादी तथा अस्तित्ववादी जीवन दर्शन

1. व्यक्ति के अकेलेपन और उसके आत्म संघर्ष की उपस्थिति (आषाढ़ का एक दिन)

2. अस्तित्ववादी चिंतन की खोज और मनुष्य जीवन की विसंगति की संश्लिष्ट अवधारणा (लहरों के राजहंस)

3. ऐतिहासिक संदर्भों में प्रवृत्ति-निवृत्ति संबंधी मानव चेतना का चिरंतन द्वंद्व (लहरों के राजहंस)

4. महानगरीय विघटनशील परिवार के बिखराव का चित्रण: हिंदी नाटक में एक नई परंपरा का प्रचलन (आधे-अधूरे)

संदर्भ ग्रंथ-सूची 165

मेरे परम पूज्य सद्गुरू

गंगाशरण सिंह पुरस्कार विजेता

प्रो. एस.ए. सूर्य नारायण वर्मा जी

के

चरण कमलों में

सादर समर्पित

प्रयोग और प्रयोगधर्मिता

साहित्य में प्रयोग का महत्व निर्विवाद है। प्रयोगशीलता के अभाव में साहित्य के क्षेत्र में गत्यवरोध आ जाता है। प्रयोगशीलता न केवल रचनाकार की क्षमता और प्रतिभा का प्रमाण है वह किसी भी कला विधा का नितांत अनिवार्य आयाम भी है। नाटक दृश्य-काव्य है। अत: नाटक के क्षेत्र में तो प्रयोगधर्मिता और भी अधिक विचारणीय तथा प्रांसगिक है। मोहन राकेश रचनाकार के स्वतंत्र तथा रंग-कर्म में प्रयोगधर्मिता को अधिक महत्व देते हैं। इस दृष्टि में आधुनिक हिन्दी नाट्य-साहित्य में मोहन राकेश का स्थान महत्वपूर्ण है। वे युग से और उसके बोध से जहाँ तक हो सके आगे हो रहे हैं। उन्होंने युग-द्रष्टा रचनाकार के दायित्व का निर्वाह किया है। "मोहन राकेश के नाटकों में प्रयोगधर्मिता" विषय का गहन अध्ययन करने से पूर्व पृष्ठ-भूमि के रूप में प्रयोग और प्रयोगधर्मिता के स्वरूप-विवेचन के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य चिन्तन में प्रयोगधार्मिता की अवधारणा को स्पष्ट किया जायेगा। आधुनिक हिन्दी नाटक में प्रतिफलित प्रयोगशील चेतन के विविध आयामों पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से "प्र" उपसर्ग के साथ "यजु" धातु में "ध" प्रत्यय लगाने से "प्रयोग" शब्द बना है। कोश ग्रंथों में इसका अर्थ "कर्मठता", "अनुष्ठान", "निदर्शन" तथा "अभिनव" आदि दिये गये हैं।[1] नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में प्रयोग का महत्व निर्विवाद है। भारतीय नाट्यशास्त्र-परम्परा में "प्रयोग" शब्द का अर्थ नाटक का अभिनव लिया जाता रहा है। "प्रयोगो यस्तु नाट्योदर भवेदभिनयोहि स:"[2] यहाँ नाटक की प्रस्तुति की दृष्टि से नाट्य प्रयोग और अभिनव- ये तीनों शब्द पर्याय कहे गये हैं। भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार शास्त्र का रंगमंच पर कर्म में रूपान्तर ही प्रयोग है। अभिनव गुप्त ने इसी को प्रेक्षकों के आगे प्रकटीकरण कहा है।[3]

प्रयोग को अंग्रेजी के "एक्स्परिमेंट" के अर्थ में ग्रहण कर हम नाटक और रंगमंच की आधुनिक समीक्षा में

---

[1] बृहत हिन्दी कोश (कालिका प्रसाद) पृ. सं. 742, हनायुध कोश (866) वैजयंती कोश (5/2/15), शब्दकल्पद्रुम भाग 3, पृ. सं. 289

[2] मालविकाग्निमित्रम की टीका में काटयवेम द्वारा उद्धत पृ. सं. 14

[3] "प्रयोग : पर्षदि प्रकटीकरणम्" : अभिनव भारती, भाग 1. पृ. सं. 17

प्रवृत्त होते हैं। नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में रूढ़ियों के बहिष्कार के साथ नवीन प्रवृत्तियों तथा अप्रचलित या अपूर्व तत्त्वों के समावेश को हम 'प्रयोग' कह सकते हैं और प्रयोग करने के लिए एक नाटक की एक प्रस्तुति उसी की पहले की गयी प्रस्तुतियों की तुलना में नवीनता लिये रहती है अन्यथा नाटक का प्रयोग या प्रस्तुति अनाकर्षक या पुनरावृत्ति मात्र बनकर रह जाती है। आधुनिक नाटक तथा रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में प्रयोग के पारंपरिक अर्थ को परिणति उक्त विशिष्ट अर्थ में अत्यंत सुसंबद्ध और सुसंगठित प्रमाणित होती है इससे यह बात स्पष्टत: विदित होती है कि नवीनता का तत्व नाटक और रंगमंच का प्राण है। प्रस्तुतिकरण में नवीनता का योग हो जाना "प्रयोग" है। वास्तव में नवीनता या आधुनिकता प्रयोगधर्मिता का ही एक तत्त्व है।

परम्परा से रूढ़ि अथवा स्थिर अपरिवर्तनीय तत्त्व का आशय ले लिया जाता है, जबकि प्रयोगधर्मिता नवोन्मेष, परिवर्तनशीलता तथा गत्यात्मकता अर्थ देती है। यद्यपि सतही तौर पर परम्परा और प्रयोगधर्मिता परस्पर विरोधी तत्त्व प्रतीत होते है किंतु इन दोनों का यह कथित विरोध वास्तविक नहीं हैं, इन दोनों को एक ही सिक्के के दो पहलू कह सकते हैं। साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में परम्परा तथा प्रयोगधर्मिता में साम्य तथा वैषम्य ही नहीं, पारस्परिक अन्त:क्रिया भी पाते हैं। साहित्यिक परम्परा में परिवर्तन की दिशायें इंगित करने वाले "प्रयोग" में स्वच्छंदता का तत्व रहता है किंतु वह अपनी परम्परा से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकता। प्रयोग परंपरा की प्रतिक्रिया है फिर भी वह परम्परा पर आश्रित होता है। क्लासिक्स में परम्परा अपनी उत्कृष्ट परिणतियों प्रकट करती हैं और स्वच्छंदतावादी कृतियों में प्रयोग। प्रयोग में नूतनता एवं आविष्कृति के तत्व अनिवार्यत: होते हैं। "परम्परा", "प्रयोग" को अपनी विरासत की समझ देती है और "प्रयोग" परम्परा पर आश्रित होता है। साहित्य के क्षेत्र में "प्रयोग" विकास का साध्य नहीं साधन है और मौलिकता उसका अनिवार्य गुण है। नवीनता की खोज करना "प्रयोग" की प्रकृति है।

भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य-चिन्तन : प्रयोगधर्मिता की अवधारण :

"रस" को केन्द्र में रखकर भारतीय नाट्य-शास्त्र की परम्परा विकसित हुई है। रसास्वाद ही नाटक का लक्ष्य है। नाट्य की उपादान सामग्री में आचार्य भरत ने प्रयोग की संभावनाओं के लिए अवकाश रखा है।